वाक्

नए विमर्शों का त्रैमासिक

जून २०१७ अंक २६

संपादक : सुधीश पचौरी

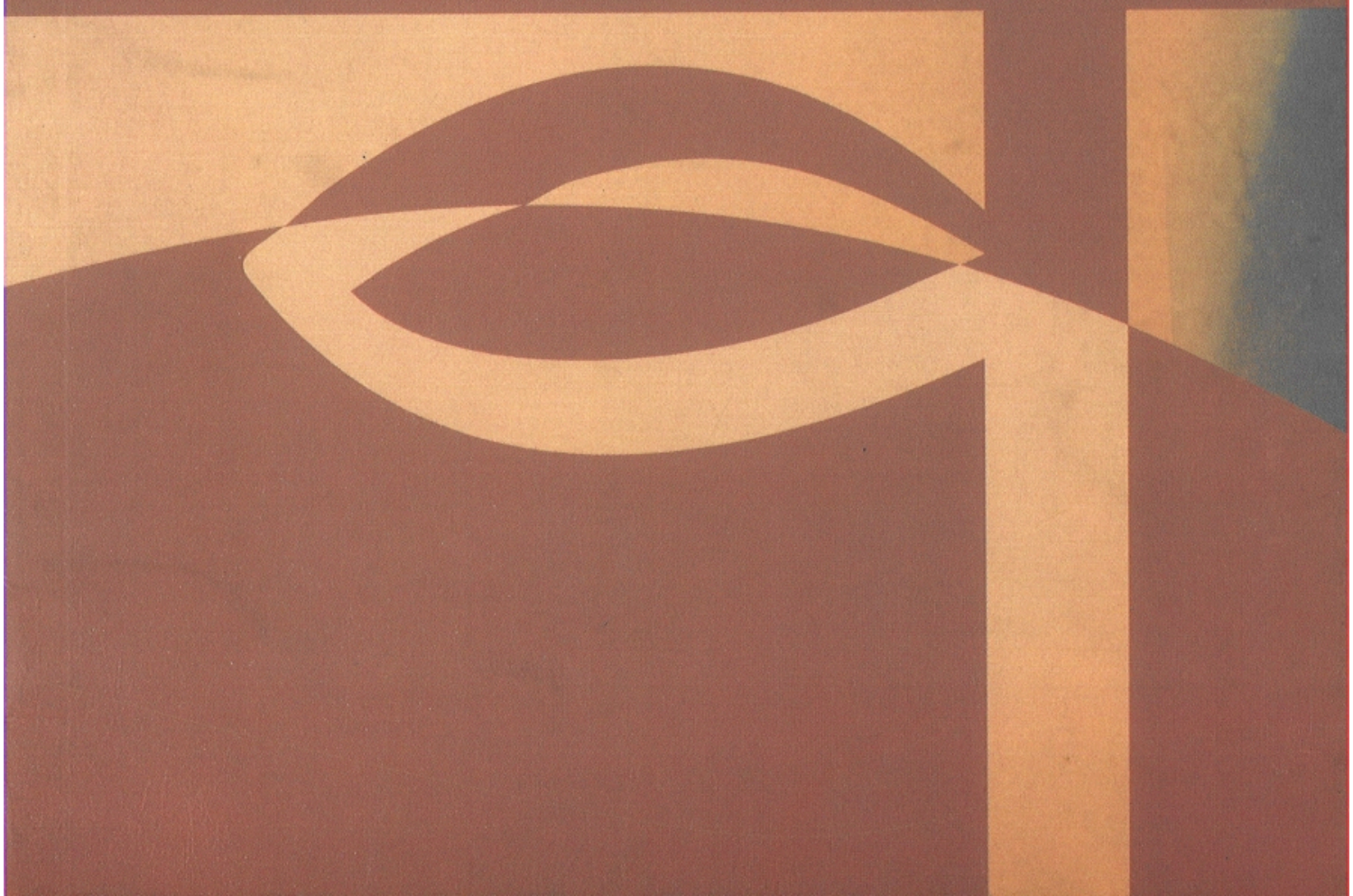

Rsethi

सुकृता पॉल कुमार की कविताएं

अनुवाद : रेखा सेठी

मैं और वह

सात पूर्णिमा पहले उससे मिली थी मैं
घर से दूर एक यात्रा पर

कद भी मुझसे आधी रही होगी
और आकार में उससे भी कम
चट्टानी गालों पर उकेरी खोखली आँखें
सघन छिद्रों से झांकती सफेदी जैसे
आधी धोती पहने चिथड़ों में लिपटी
वह नाटी-सी औरत

अकेली है वह
छोटे-बड़े बच्चों
और उस जिंदगी से थके
आदमी-औरतों के बीच
कांप उठी थीं उसके चेहरे की झुर्रियां
जब उसने कहा था—
'घुमंतू' हैं हम
इतिहास ने बना दिया अपराधी
बंटारकार छोड़ दिए गए हैं
इस गंदी बस्ती में
खुद खाने-कमाने को
लुंज हो आई अपनी उंगलियों के साथ

मैंने सुना, आप दिल्ली से हैं
—ताकत का शहर—
दिला दो मुझे छत
दिला दो रोटी और कपड़ा
दुआएं मिलेंगी मेरी तुम्हें

तुम्हारे और मेरे, हमारे पूर्वज
जैसा कि तुम जानती ही होंगी
एक ही हैं
नस्ल, जाति और वर्ग से ऊपर
हर चांदनी रात में
वे जोड़ते हैं मुझे तुमसे

अतीत में सहे घावों की छायाओं का
घरौंदा है उसकी देह और
आत्मा से झांकते हैं
गहरे ज़ख़्मों के अक्स
हड्डियों का गट्ठर हो गई वह
पोर-पोर, जोड़-जोड़ वक्र
आड़ी-तिरछी सरकती हुई
आती है पास
मेरा गदराया हाथ
बढ़ा है कुछ सिक्के ढूंढ़ने
अपने झोले की उथल-पुथल में
सिक्के जो धरे जा सकें
उसकी सूखी हथेलियों पर
जो बढ़ी थीं मेरी ओर मुझे गले लगाने

कौन लगती हूं मैं उसकी
और कौन है वो मेरी
बंधे रहें हम उस आलिंगन में
क्या है जिसने बुने हैं
ये धागे हमारे बीच क्या सचमुच हमारे पूर्वज
हर पूर्णमासी को जागते हैं
हमें जोड़ने?
बुलाती है वो मुझे और
मैं उठती हूं पंजों के बल
रोशनी की किरणों पर चल कर
उसे गले लगाती।

घर लौटते शब्द

आओ मेरे शब्दों में
सांसें भर दो

पत्थर हो जाते हैं शब्द
अपने निर्वासन में

नहीं अपनाते उनको
जब तक कवि
अपने अकेलेपन में
वे होते हैं
निर्जीव प्राण रहित
करवट बदलने में अक्षम
रूढ़ जीवाश्म हो जाते हैं

कुत्ते भी यूँ न होते...
किसी गली से उजाड़ दी जाने पर
लंगड़ाते-लड़खड़ाते चल देते हैं वे
अपनी जिजीविषा के साथ
दूर कहीं जाकर पाते
अपना ज़मीनी हक़
और जमा लेते हैं जड़ें
सुनहले दिलवालों से जुड़ जाते हैं

अपने अतीत की यादों से
जोते और हांके जाते
करते हैं सवारी
वर्तमान की तरंगित
लहरों पर

उनकी तरह
आओ, सवार होकर
शांत पड़े शब्दों और चुप्पी की चट्टानों
तक पहुंचो
इंतजार में पड़ी हैं जो स्थिर

और कविताओं में जगाओ
वह सृजन, वह जीवन

जहां निर्वासित नहीं

परस्पर आश्रित हों
पशु-पौधे और मनुष्य।

यादें

महज एक पर्दा है
तुम्हारा यह सिकुड़ा हुआ
सर्दियों का वल्कल
उन चहचहाते पलों पर
बातचीत की घनी सुरंगों पर
संजीदा बहसों पर

बर्फ की घंटों लंबी साधनाएं

ऊंचे उड़ते हम आसमानों में
ब्रह्मांड से उठती आवाज़ों
की ओर

पतझड़ में भी नहीं ताकत कि
वह उन सबको झाड़ दे।

याद रखना
मैं तुम्हारे पत्तों की हरियाली नहीं
जो हर बार मौसम की करवट से
तुम्हें छेड़ने
बार-बार लौट आती है

इस सर्द जागती हुई सुबह में
सब कुछ देखती हूं मैं
कि वास्तव में तुम हो
अपने ही प्रेत से मुक्त...
सब कुछ देखती हूं मैं

आज भी
उसी हरी चादर में
लिपटी है चिरायु आत्मा
न जाने कहां से उभर आती

जहांपनाह के लंबे कीकरों पर
दबे पैर

एक अनकही कथा

इधर या की उधर
जिधर भी चौबे जी देखते

बिखर जाती हैं कहानियां
सुनी-सुनाई बार-बार दोहराई कथाएं

उनकी आंखों और उनके कानों से
उछल पड़ती हैं गिलहरियां
उनके रोयेंदार नथुनों से
लड़खड़ाकर निकल जाती हैं छोटी छोटी साहियां

उनके पांवों पर चढ़ आती हैं कहानियां
लाल चींटियों-सी रेंगती हैं उनके ऊपर
नवाब और बेगम
राजा और रानियां

अंग्रेज़ी में
बेहद हलका हो जाता है
उनका चटपटा-चुटीलापन
विलियम क्रुक के सफेद कानों में पड़कर
चाकलेट हो जाते हैं लड्डू
और ब्लू बेल्स में बदल जाता है मोगरा

बेहद चतुराई से पलट जाती हैं
पंडित रामगरीब चौबे की कई ज़बानें,
अवधी, ब्रज, खड़ीबोली, भोजपुरी
यहां तक कि संस्कृत और फारसी से
इंगलिशतान की ज़बान में

इस संयुक्त प्रांत के बनने के समय से ही
लोगों की कल्पना को हवा देती हैं
और-और कहानियां जो

यादों की गहरी सुरंगों से
सतह पर उभर आती हैं
और भर देतीं
पहले से लबालब भरे
चौबे जी के दिमाग की देगची को

पागलपन की तरंगें

इतिहास के अदृश्य
बधिर पड़ी पूरी एक शब्दादी

मिस्र की ममी की तरह
अपनी हस्तलिखित कथाओं
की जिल्दों के बीच
जब तक कि
हिलाकर न जगा दे उन्हें
किसी सहयात्री की कलम की स्याही की गंध

एक बार फिर
उनके कानों से उड़ने लगते हैं कबूतर
आंखों से उछलने लगती हैं गिलहरियां

लंदन की फोकलोर सोसाइटी में।

निरंतरता

पर्वत की गोलाई
के तीखे धारदार
अंधे मोड़ पर,
मैं रुकूं, देखूं बाहर?
या तेजी से निकल जाऊं
गहरी घाटी में गिरकर
जीवन खो देने का
खतरा उठाऊं?

मगर जानती हूं मैं
उस मोड़ पर

जैसे ही सीमा पार उतरूंगी
यहां और वहां के बीच
उड़ जाऊंगी
क्षितिज पार
अपने पूर्वजों से जा मिलूंगी
आकाश गंगा में

एक चोरनी चील
झपट्टा मारती उतरेगी नीचे
मृत देह को ले जा
अपने बच्चों का पेट भरेगी